भारत सरकार

विधि, न्याय और कंपनी कार्य मंत्रालय

सत्यमेव जयते

भारत का विधि आयोग

उस विषमता का, जो विधान-मंडल के हितकारी आशय को अकृत करती है और उन निर्णीतऋणियों के प्रति, जिनके लिए फायदा चाहा गया है, अन्याय करती है, दूर करने के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 92(2) का संशोधन करने के लिए अत्यावश्यकता पर

139वीं रिपोर्ट

1991

प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, कोयम्बतूर द्वारा मुद्रित तथा प्रकाशन-नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-100 054 द्वारा प्रकाशित।

मूल्य : (देश में) रुपए 194.00; (विदेश में) £7.50 या $.11.63

न्या॰ एम॰ पी॰ ठक्कर
अध्यक्ष

फोन : 384475

विधि आयोग
भारत सरकार
शास्त्री भवन
नई दिल्ली

अ॰शा॰ सं॰ : 7(6)/91-वि॰आ॰ (एल॰एस॰)

4 अप्रैल, 1991

प्रिय मंत्री महोदय,

संदर्भ : 139वीं रिपोर्ट का प्रस्तुतीकरण।

भारत के विधि आयोग की 139वीं रिपोर्ट संलग्न है जिसका विषय है:—

"सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 92(2) का संशोधन जिससे कि उस अंतर्विरोध को दूर किया जा सके जिसके कारण विधान-मंडल का उदार आशय नष्ट होता है और जिन न्यायनिर्णीत ऋणगृहीताओं को फायदा पहुंचना चाहिए, उनके प्रति अन्याय होता है"।

रिपोर्ट के नाम से जैसा प्रकट होता है, उस विरोध को दूर करने की शीघ्र आवश्यकता है जिसके परिणामस्वरूप (परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 127 का संशोधन करके) एक हाथ से जो दिया जाना था वह दूसरे हाथ से सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 92(2) द्वारा वापिस ले लिया जाता है, क्योंकि इसे परिसीमा अधिनियम के संशोधित अनुच्छेद 127 के अनुरूप नहीं किया गया है। पी॰के॰ उन्नी के मामले में (पी॰के॰ उन्नी बनाम निर्मला इंडस्ट्रीज, ए॰आई॰आर॰ 1990 एस॰सी॰ 933 : (1990) 2 एस॰सी॰सी॰ 378) उच्चतम न्यायालय के हाल ही के निर्णय को ध्यान में रखते हुए, न्यायनिर्णीत ऋणगृहीताओं को संभावित अन्याय को दूर करने की दृष्टि से ही नहीं अपितु शीघ्र ही आवश्यक कदम उठाने के लिए भी ऐसा करना अनिवार्य है।

सादर,

भवदीय,

(ह॰)

(एम॰ पी॰ ठक्कर)

डा॰ सुब्रमण्यम स्वामी
विधि और न्याय मंत्री
भारत सरकार
शास्त्री भवन
नई दिल्ली

1-5/M of L&J/ND/93

विषय सूची

		पृष्ठ
अध्याय 1 :	प्रस्तावना	1
अध्याय 2 :	सुसंगत कानूनी उपबन्ध	2
अध्याय 3 :	विधि जैसी वह न्यायिक विनिश्चयों के प्रकाश में आती है	4
अध्याय 4 :	तुरन्त संशोधन करने के लिए अत्यावश्यकता	7
टिप्पण और निर्देश		10

उस विषमता को, जो विधान-मंडल के हितकारी आशय को अकृत करती है और उन निर्णीत ऋणियों के प्रति, जिनके लिए फायदा चाहा गया है, अन्याय करती है, दूर करने के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 92(2) का संशोधन करने के लिए अत्यावश्यकता पर 139वीं रिपोर्ट।

अध्याय 1

प्रस्तावना

1.1. विधि की वह विसंगति, जो दो असंगत मत व्यक्त करती है—जैसी कि विधि आज है, ऐसे निर्णीत ऋणी या डिक्री के निष्पादन में विक्रीत किसी सम्पत्ति में हित का दावा करने वाले किसी व्यक्ति को, जो नीलाम की गई सम्पत्ति के विक्रय को अपास्त करने के लिए आदेश 21, नियम 89(1) के अधीन उसको प्रदत्त मूल्यवान अधिकार का आश्रय लेने का इच्छुक है, उस निमित्त आवेदन करने पर, जो उक्त उपबन्ध द्वारा विहित रकम के साथ हो, असंभव स्थिति का सामना करना पड़ता है क्योंकि उससे—

(1) अपेक्षित रकम "न्यायालय में निक्षिप्त करने पर" अर्थात् न्यायालय में आवेदन के निक्षेप के साथ होने पर आवेदन करने की;

(2) साठ दिन के भीतर आवेदन करने की जिससे कि वह बैंक से अपेक्षित रकम का संग्रह कर सके (विधान-मंडल की यह राय है कि इस प्रक्रिया में तीस दिन से अधिक किन्तु साठ दिन से कम कालावधि अपेक्षित होगी);

(3) आवेदन, जो निक्षेप के साथ साठ दिन के भीतर किया जा सकता है, रकम का निक्षेप करने पर तीस दिन के भीतर ही किया जाना चाहिए यद्यपि विधान-मंडल ने यह स्वीकार किया है कि तीस दिन से अधिक की इसमें आवश्यकता होगी और तदनुसार उसने आवेदन करने का समय तीस दिन से बढ़ाकर साठ दिन कर दिया है।

1.2. रिपोर्ट का परिप्रेक्ष्य—हम, इस रिपोर्ट में निक्षेप करने के लिए, जो निष्पादन विक्रय को अपास्त करने के लिए आवेदन के साथ होगा, समय से संबंधित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 से उद्भूत होने वाले विषय-बिन्दु से संबंधित हैं। सुसंगत कानूनी उपबन्ध आगे उपवर्णित किए जाएंगे और इस विषय पर निर्णयज विधि की सम्यक् अनुक्रम में बाद में चर्चा की जाएगी। इस समय यह कहना पर्याप्त होगा कि उस उपबन्ध का जिससे हम संबंधित हैं, मुकदमेबाजों द्वारा बहुधा न्यायालयों में आश्रय लिया गया है और इसलिए यह पर्याप्त व्यावहारिक महत्व का है और जब तक कि विसंगति को हटाया नहीं जाता है तब तक बलात् विक्रय से सम्पत्ति बचाने की इच्छा रखने वाले व्यक्तियों के प्रति इससे घोर अन्याय होगा। चूंकि हमारा ध्यान एक तरफ सिविल प्रक्रिया संहिता में सुसंगत उपबन्ध और दूसरी तरफ परिसीमा अधिनियम में संबंधित उपबन्ध के बीच इस असंगति की ओर आकर्षित किया गया है अत: यह वांछनीय समझा जाता है कि इस विषय का अध्ययन किया जाए और विधि में इस कमी को दूर करने के क्रम में उस पर एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जाए।

1.3. सुझाव जो पहले ही विधि आयोग द्वारा और न्यायिक विनिश्चयों में दिए गए हैं—जैसा कि इस रिपोर्ट में बाद में बताया जाएगा, इस विषय बिन्दु पर विधि के किसी संशोधन के लिए, जो रिपोर्ट की विषय वस्तु है, आवश्यकता पर 28 फरवरी, 1983 को भारतीय विधि आयोग की 89वीं रिपोर्ट के पैरा 42.35 में दस वर्ष पहले ही प्रकाश डाला गया है। हम उसे उद्धृत करते हैं:—

> "42.35. तथापि, हमें सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में संबंधित उपबन्ध के प्रति निर्देश करना चाहिए जिसमें संशोधन की आवश्यकता है। परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 127 आवेदनों से संबंधित है, जिसकी बाबत संहिता का आदेश 21, नियम 92(2) सुसंगत है। अनुच्छेद 127 के अधीन, 1976 में उसके संशोधन[1] के पश्चात्, किसी आवेदन के लिए परिसीमा की कालावधि, साठ दिन है। आवेदन के साथ निक्षेप होगा। तथापि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 92(2) के अधीन अपेक्षित निक्षेप करने के लिए कालावधि अभी भी तीस दिन है। दोनों कानूनी उपबंधों के बीच असंगति हटाई जानी चाहिए। हम इंगित कर सकते हैं कि असंगति का केरल उच्च न्यायालय[2] के हाल के निर्णय में भी उल्लेख किया गया है। इस असंगति को हटाने के लिए हम सुझाव देते हैं कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 92(2) का, कालावधि को तीस दिन से बढ़ाकर साठ दिन[3] करके, यथोचित रूप से संशोधन किया जाना चाहिए।"

---

1. धारा 98, सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1976।
2. दक्षयिनी बनाम माधवन, ए० आई० आर० 1982 केरल 126 (जून)।
3. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 21, नियम 92(2) के अधीन किया जाए।

इस पर भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा भी जोर दिया गया है और यह वांछनीय प्रतीत होता है कि यह विषमता अभागे मुकदमेबाजों के प्रति घोर अन्याय को रोकने के लिए यथासंभव शीघ्र दूर की जानी चाहिए।

1.9. रिपोर्ट की स्कीम—इस विषय का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करने के क्रम में इस रिपोर्ट में यह प्रस्ताव किया जाता है कि पहले सुसंगत कानूनी उपबंधों के संबंध में चर्चा की जाए और तत्पश्चात् उन उपबंधों से संबंधित महत्वपूर्ण न्यायिक निर्णयों के बारे में चर्चा की जाए और चर्चाओं के पश्चात् विधि के संशोधन के लिए आवश्यकता के बारे में विचार किया जाए और अन्तिम रूप से आयोग विद्यमान विषमतापूर्ण स्थिति को समाप्त करने के लिए, जिसके लिए तुरन्त उपचारी विधायी उपाय किए जाने की आवश्यकता है, समुचित सिफारिशें करेगा।

अध्याय 2

सुसंगत कानूनी उपबन्ध

2.1. विवाद की उत्पत्ति—वह विवाद, जो इस रिपोर्ट की विषय-वस्तु है, सिविल प्रक्रिया संहिता और परिसीमा अधिनियम के उन कतिपय उपबंधों से उद्भूत हुआ है, जो निर्णीतऋणी के विरुद्ध किसी न्यायालय की डिक्री के निष्पादन में लोक नीलाम द्वारा न्यायालय द्वारा आदिष्ट विक्रय को अपास्त करने के लिए आवेदन से संबंधित है। यह विषय बिन्दु विधि द्वारा (क) ऐसे किसी आवेदन के लिए और (ख) उस रकम का निक्षेप करने के लिए, जो आवेदन के साथ भेजी जानी अपेक्षित है, विहित परिसीमा काल से संबंधित है।

2.2. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की स्कीम में ऐसा विक्रय उस संहिता के आदेश 21, नियम 89 के उन उपबंधों के अधीन अपास्त किया जा सकता है, जो नीचे उद्धृत हैं—

"89. **निक्षेप करने पर विक्रय को अपास्त कराने के लिए आवेदन**—(1) जहां स्थावर सम्पत्ति का किसी डिक्री के निष्पादन में विक्रय किया गया है, वहां विक्रीत सम्पत्ति में विक्रय के समय या आवेदन करने के समय किसी हित का दावा करने वाला अथवा ऐसे व्यक्ति के लिए या उसके हित में कार्य करने वाला कोई व्यक्ति,—

(क) क्रय धन के पांच प्रतिशत के बराबर रकम क्रेता को संदत्त किए जाने के लिए, तथा

(ख) विक्रय की उद्घोषणा में ऐसी रकम के रूप में जिसकी वसूली के लिए विक्रय का आदेश दिया गया था, विनिर्दिष्ट रकम उसमें से वह रकम घटाकर जो विक्रय की उद्घोषणा की तारीख से लेकर तब तक डिक्रीदार को प्राप्त हो चुकी है, डिक्रीदार को संदत्त किए जाने के लिए,

न्यायालय में निक्षिप्त करने पर विक्रय को अपास्त कराने के लिए आवेदन कर सकेगा।

(2) जहां कोई व्यक्ति अपनी स्थावर सम्पत्ति के विक्रय को अपास्त कराने के लिए आवेदन नियम 90 के अधीन करता है वहां, जब तक कि वह अपना आवेदन लौटा न ले, वह इस नियम के अधीन आवेदन देने का या उसको आगे चलाने का हकदार नहीं होगा।

(3) इस नियम की कोई भी बात निर्णीतऋणी को, ऐसे किसी दायित्व से अवमुक्त नहीं करेगी जिसके अधीन वह उन खर्चों और ब्याज के संबंध में हो, जो विक्रय की उद्घोषणा के अन्तर्गत नहीं आते।"

सारतः, विक्रय अपास्त करने के लिए आवेदन के साथ अपेक्षित रकम अवश्य होनी चाहिए।

2.3. आदेश 21, नियम 92(2), सिविल प्रक्रिया संहिता—जहां तक उस निक्षेप के लिए, जो निष्पादन विक्रय अपास्त करने के लिए किसी आवेदन के साथ होगा, परिसीमा काल से संबंधित है, वह सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 21, नियम 92 में अन्तर्विष्ट उपबन्ध के आधार पर 30 दिन है। उस नियम के तात्विक भागों को नीचे उद्धृत किया जाता है:—

"92. **विक्रय कब आत्यन्तिक हो जाएगा या अपास्त कर दिया जाएगा**—(1) जहां नियम 89, नियम 90 या नियम 91 के अधीन कोई भी आवेदन नहीं किया गया है या जहां ऐसा आवेदन किया गया है और अनुज्ञात कर दिया गया है वहां न्यायालय विक्रय को पुष्ट करने वाला आदेश करेगा और तब विक्रय आत्यन्तिक हो जाएगा :

परन्तु जहां किसी सम्पत्ति का, ऐसी सम्पत्ति के किसी दावे का अन्तिम निपटारा होने तक या उसकी कुर्की के लिए आक्षेप के लम्बित रहने तक डिक्री के निष्पादन में विक्रय किया गया है वहां न्यायालय ऐसे विक्रय को ऐसे दावे या आक्षेप के अन्तिम निपटारे तक पुष्ट नहीं करेगा।

(2) जहां ऐसा आवेदन किया गया है और अनुज्ञात कर दिया गया है और जहां नियम 89 के अधीन आवेदन की दशा में वह निक्षेप जो उस नियम द्वारा अपेक्षित है, विक्रय की तारीख से तीस दिन के भीतर कर दिया गया है या उस दशा में जिसमें नियम 89 के अधीन निक्षिप्त रकम, निक्षेपकर्ता की ओर से हुई किसी लिपिकीय या गणित संबंधी भूल के कारण कम पाई जाती है और ऐसी कमी इतने समय के भीतर पूरी कर दी जाती है जितना न्यायालय द्वारा नियत किया जाए वहां न्यायालय विक्रय को अपास्त करने वाला आदेश करेगा :

परन्तु जब तक की आवेदन की सूचना उसके द्वारा प्रभावित सभी व्यक्तियों को न दे दी गई हो, ऐसा कोई आदेश नहीं किया जाएगा।

(3)————
(4)————
(5)————"

इस प्रकार अपेक्षित रकम का जो आवेदन के साथ अवश्य होनी चाहिए, निक्षेप, तीस दिन के अन्दर किया जाना चाहिए।

2.4. समय की परिसीमा के भीतर अनुपालन आज्ञापक—इस प्रक्रम पर इस बात पर जोर दिए जाने की आवश्यकता है कि तीस दिन के भीतर निक्षेप से संबंधित आदेश 21, नियम 92(2) की अपेक्षा न्यायालयों के निर्णयों के अनुसार आज्ञापक है (वनीसामी थेवर बनाम पैरियास्वामी थेवर, ए आई आर 1917 मद्रास 176, 177 (डी बी) देखिए।) न्यायालय धारा 148 या धारा 151, सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन समय नहीं बढ़ा सकता है (मतरानी देवी बनाम छथू प्रसाद, ए आई आर 1972 पट. 55 (यू. एन. सिन्हा, मुख्य न्यायमूर्ति)।

2.5. अनुच्छेद 127, परिसीमा अधिनियम, 1963—यह देखा जाएगा कि जहां आदेश 21, नियम 92(2), सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन निक्षेप करने के लिए कालावधि तीस दिन है, वहां निष्पादन विक्रय अपास्त करने के लिए आवेदन करने के लिए (जिस आवेदन के साथ न्यायालय में अपेक्षित रकम का निक्षेप होगा) परिसीमा की कालावधि साठ दिन है, जो परिसीमा अधिनियम, 1963 (1976 में यथा संशोधित) के अनुच्छेद 127 के आधार पर है।

परिसीमा अधिनियम, 1963 (1976 में यथा संशोधित) का अनुच्छेद 127 यथा निम्नलिखित है :—

आवेदन का वर्णन	परिसीमा काल	वह समय जब से काल चलना आरम्भ होता है
डिक्री के निष्पादन में हुए विक्रय को अपास्त कराने के लिए आवेदन, जिसके अन्तर्गत निर्णीत ऋणी द्वारा किया गया ऐसा आवेदन आता है।	साठ दिन	विक्रय की तारीख

यह अनुभव किया जाता है कि 1976 से पहले परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 127 में वर्णित कालावधि तीस दिन थी किन्तु इसमें इसके पश्चात् वर्णित परिस्थितियों में पहले विद्यमान विधि में किसी संशोधन के आधार पर 1976 में बढ़ाकर **साठ दिन** कर दी गई थी।

2.6. संशोधन के लिए कारण—परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 127 में अन्तर्विष्ट उपबन्ध को विधान-मंडल द्वारा इस अनुभव के आधार पर कि तीस दिन की संशोधन पूर्व कालावधि निर्णीत ऋणी को इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि बैंक साधारणतया उधारों और अग्रिमों की मंजूरी देने में तीस दिन से अधिक लेती है, अपेक्षित निधियों के लिए व्यवस्था करने में समर्थ बनाने के लिए अपर्याप्त समझा गया था, (डिक्री के निष्पादन में विक्रय अपास्त करने के लिए) निर्णीत ऋणी के भाग पर कोई निक्षेप करने के लिए समय बढ़ाकर संशोधित किया गया था। यह सुसंगत विधेयक के उद्देश्यों और कारणों के कथन से स्पष्ट है जो नीचे उद्धृत किया जाता है।

अध्याय 3

विधि जैसी वह न्यायिक विनिश्चयों के प्रकाश में आती है

3.1. वर्तमान स्थिति—सुसंगत कानूनी उपबन्धों से, जैसे वे 1976 के पश्चात् हैं, परिणामी अपेक्षित रकम के निक्षेप पर विक्रय अपास्त करने की बाबत कुल स्थिति यथा निम्नलिखित है:—

(i) किसी निष्पादन विक्रय को (जो डिक्री धारक और नीलाम क्रेता के लिए अपेक्षित रकम के न्यायालय में निक्षेप के साथ होना अपेक्षित है) आवेदन साठ दिन के भीतर किया जा सकता है। (अनुच्छेद 127, परिसीमा अधिनियम, 1963); और

(ii) पूर्वोक्त रकम का निक्षेप सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 92(2) के अधीन तीस दिन के भीतर किया जाना है और तीस दिन की कालावधि अपरिवर्तनीय है क्योंकि उपबन्ध आज्ञापक होना निर्धारित किया गया है।

3.2. विषमता—स्पष्टत: जब परिसीमा अधिनियम को 1976 में संशोधित करते हुए यह अनुभव नहीं किया गया था कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 92 का पूरक उपबन्ध इस आशय का उपबन्ध करने के लिए कि समुचित रकम के न्यायालय में निक्षेप के साथ तीस दिन के भीतर विक्रय अपास्त करने के लिए किए जाने वाले आवेदन पर कोई विक्रय अपास्त किया जाएगा, को भी परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 127 द्वारा विहित समय बढ़ाने के प्रयोजन की पूर्ति के लिए सुसंगत अवधि तीस दिन से बढ़ाकर साठ दिन करके संशोधित किए जाने की आवश्यकता है। इस प्रकार आवेदन करने के लिए समय और निक्षेप करने के लिए समय, जो आदेश 21, नियम 92(2) के साथ पठित परिसीमा अधिनियम के असंशोधित अनुच्छेद 127 के अधीन तत्समान था, अनुच्छेद 127 के संशोधन को ध्यान में रखते हुए असंगत हो गया। यह पूर्व उपबन्ध के अधीन साठ दिन हो गई और पश्चात्वर्ती उपबन्ध के अधीन तीस दिन रही। विधान-मंडल अनुभव के आधार पर यह महसूस करते हुए कि बैंकें उधार की व्यवस्था करने में तीस दिन से अधिक लेंगी और निक्षेप करने के लिए तीस दिन का समय बहुत कम था, परिसीमा अधिनियम के (आवेदन करने के लिए) सुसंगत अनुच्छेद को तीस दिन के स्थान पर साठ दिन की अवधि को प्रतिस्थापित करके संशोधित कर दिया। तथापि अनुमानत: दुर्भाग्यवश असावधानी के कारण यह प्रारूपकार के, अनुच्छेद 127, परिसीमा अधिनियम का संशोधन करने के लिए विधेयक तैयार करते समय ध्यान में आने से रह गया कि जब तक कि नियम 92(2) के आदेश 21 में तत्समान संशोधन नहीं किया जाता है तब तक विधान का प्रयोजन विफल हो जाएगा। इसका कारण यह है कि जब कि आवेदन करने के लिए समय बढ़कर साठ दिन हो जाएगा, निक्षेप (अवधि के साथ होने के लिए तात्पर्यित) करने के लिए समय अपरिवर्तित तीस दिन रह जाएगा। इस प्रकार, परिसीमा अधिनियम के संशोधन के होते हुए भी, निर्णीत ऋणी विक्रय अपास्त करने में असफल हो जाएगा, यदि वह तीस दिन के भीतर, जैसा कि विधान-मंडल ने स्वयं अपेक्षित रकम का संग्रह करने के लिए अपर्याप्त समझा था, निक्षेप करने में समर्थ नहीं था और यह वांछनीय समझा कि परिसीमा अधिनियम में सुसंगत अनुच्छेद का संशोधन करके उस मुद्दे अवधि को साठ दिन तक बढ़ा दिया जाएगा।

संक्षेप में, आवेदन के साथ निक्षेप करने के लिए अवधि और आवेदन के करने के लिए अवधि अब और भिन्न हैं, विषमता उद्भूत हो गई।

3.3. केरल उच्च न्यायालय निर्णय—इस विषमता के प्रति केरल उच्च न्यायालय द्वारा (मुख्य न्यायमूर्ति पोटी और न्यायमूर्ति भास्करन द्वारा दक्षिनी बनाम माधवन में निम्नलिखित संप्रेक्षण करके इंगित किया था:—

"स्वभावत:, अत: उस संशोधन के पश्चात् किसी विक्रय को अपास्त करने के लिए उपलब्ध कालावधि साठ दिन थी। इसलिए यदि कोई व्यक्ति आदेश 21, नियम 89 द्वारा अनुध्यात रूप में रकम का निक्षेप करता है, और विक्रय अपास्त करने के लिए आवेदन करता है तो उसे विक्रय की तारीख के साठ दिन के भीतर आवेदन करने की आवश्यकता होगी। आदेश 21, नियम 89 के अधीन अनुध्यात अनुच्छेद संहिता के आदेश 21, नियम 92(2) में उपबन्धित रूप में विक्रय की तारीख के तीस दिन के भीतर किया जाना था। ऐसे मामलों में जहां नियम 89 के अधीन निक्षेप की गई रकम को निक्षेपकर्ता की ओर से किसी लिपिकीय या गणितीय गलती के कारण कम पाया गया तो ऐसी कमी को न्यायालय द्वारा नियत किए गए समय के भीतर पूरा किया जा सकता है। आदेश 21, नियम 89 द्वारा अनुध्यात निक्षेप, नियम 92(2) में विनिर्दिष्ट समय के भीतर किया जाना था, विक्रय अपास्त करने के लिए पूर्व शर्त था। स्पष्टत: नियम 92(2) के आदेश 21 के अधीन अनुध्यात तीस दिन की कालावधि

परिसीमा अधिनियम के, जैसा वह पूर्ववर्ती था, अनुच्छेद 127 के अधीन तीस दिन के तत्समान कालावधि थी। इससे अभिप्रेत था कि निक्षेप साथ ही आवेदन तीस दिन के भीतर किए जाने थे। जब इस समय के बारे में यह चाहा गया कि उसे बढ़ा दिया जाए तो परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 127 को संशोधित किया गया। यद्यपि आदेश 21, नियम 92(2) के साथ तत्समान व्यवहार किए जाने की आवश्यकता थी, किन्तु वह स्पष्टत: रह गया था। जब तक कि हम यह उपधारणा न करें कि विधान-मंडल ने दो भिन्न कालावधियां चाही थी, एक मास की कालावधि निक्षेप करने के लिए और दो मास आवेदन के लिए, जो अवश्य ही, स्पष्टत:, युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होते हैं।"

हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यह विधान-मंडल की ओर से स्पष्ट भूल का मामला है कि यह ध्यान नहीं दिया कि अनुच्छेद 127 में विनिर्दिष्ट कालावधि के तत्समान कालावधि को उस कालावधि के रूप में अनुबंद्ध किया जाना था जिसके भीतर संहिता के आदेश 21 नियम 92(2) के उपबन्ध में निक्षेप किया जाना है। इसका परिणाम अब यह है कि यदि हम उस नियम को, जैसा वह अब है, पढ़ते हैं तो निक्षेप 30 दिन के भीतर किया जाना होगा और आवेदन साठ दिन के भीतर किया जाना होगा। हमारे सामने जो मामला है उसमें निक्षेप और आवेदन साठ दिन के भीतर किए गए थे। निक्षेप तीस दिन के भीतर नहीं किया गया था। परिणामस्वरूप आवेदन निचले न्यायालय के आदेश से खारिज किया गया है और वह आदेश है जिस पर इस पुनरीक्षण में आक्षेप किया गया है।

"2. ----------हम केवल इस विषमता के प्रति निर्देश कर सकते हैं और कह सकते हैं कि विधि असामयिक रूप से कार्य करती है, शायद ऐसा इसलिए है कि विधान-मंडल ने आदेश 21, नियम 92(2) में उपबन्ध का संशोधन करने की आवश्यकता पर ध्यान नहीं दिया। हम केवल नियम में संशोधन करने के लिए तुरन्त कार्रवाई करने की आवश्यकता की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करने की मांग कर सकते हैं। परिणामस्वरूप जब कि हम इस पुनरीक्षण को खारिज कर रहे हैं, हम केन्द्रीय सरकार को आदेश 21, नियम 92(2) में निक्षेप की कालावधि तीस दिन से बढ़ाकर साठ दिन कर देने की आवश्यकता के प्रति सावधान करते हैं जिससे कि उसे परिसीमा अधिनियम के नियम (अनुच्छेद देखिए) 127 के अनुरूप बनाया जा सके। इस आदेश की एक प्रति केन्द्रीय सरकार के प्लीडर को आगे भेजने के लिए देने के अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार के विधि विभाग को भेजी जाएगी। (ज़ोर दिया गया)"

स्पष्टत:, विधि विभाग द्वारा इन संप्रेक्षणों पर कोई समुचित ध्यान नहीं दिया गया था और किसी उपचारी संशोधन पर विचार विमर्श नहीं किया गया।

3.4. उच्चतम न्यायालय निर्णय (1986)—पश्चात्वर्ती 1986 में, उच्चतम न्यायालय ने भी इस विषमता को देखा और यथा निम्नलिखित प्रेक्षण किया:—

"2. रकम का निक्षेप करने में असफलता से आदेश 21, नियम 91(1) के अधीन विक्रय की पुष्टि होती है और तदुपरि विक्रय आत्यन्तिक हो जाता है। आदेश 21, नियम 89 के अधीन किसी आवेदन के लिए विहित परिसीमा, परिसीमा अधिनियम, 1908 की अनुसूची 1, अनुच्छेद 166 के अधीन विक्रय की तारीख से तीस दिन थी, जिस अनुच्छेद को अब परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 127 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है। "न्यायालय में निक्षेप करने पर विक्रय अपास्त कराने के लिए आवेदन कर सकता है" आदि शब्द प्रदर्शित करते हैं कि न केवल आवेदन, किन्तु निक्षेप भी, विक्रय की तारीख से तीस दिन के भीतर किया जाना चाहिए। तीस दिन के भीतर आवेदन करना ही पर्याप्त नहीं है और न केवल यह पर्याप्त है कि निक्षेप तीस दिन के भीतर किया जाए। आवेदन और निक्षेप दोनों, विक्रय की तारीख से तीस दिन के भीतर किए जाने चाहिए। परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 127 को अब 1976 के अधिनियम 104 द्वारा संशोधित किया गया है और 'साठ दिन', शब्दों को 'तीस दिन' शब्दों द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है। इस संशोधन के परिणामस्वरूप, किसी डिक्री के निष्पादन में विक्रय अपास्त करने के लिए किसी ऐसे आवेदन के लिए, जिसके अन्तर्गत आदेश 21, नियम 89 या नियम 90 के अधीन निर्णीत ऋणी द्वारा कोई ऐसा आवेदन भी है, परिसीमा अत: अब साठ दिन है। ऐसी विधि होते हुए, संहिता के नियम 92 के उपनियम (2) के किसी संशोधन की आवश्यकता नहीं है। आदेश 21, नियम 89, के अधीन जैसा वह अब विद्यमान है, आवेदन और निक्षेप दोनों विक्रय के तीस दिन के भीतर किए जाने चाहिए। अनुज्ञात समय के भीतर ऐसा निक्षेप करने में असफलता एकदम नियम 92 के उपनियम (2) में उपवर्णित परिणामों को आकर्षित करती है। यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है और संसद् को अवश्य ही विधि में आवश्यक परिवर्तन अधिनियमित करना चाहिए।"

1981में केरल उच्च न्यायालय द्वारा किए गए संप्रेक्षणों की उच्चतम न्यायालय के अनुमोदन से निम्नलिखित शब्दों में पुनरावृत्ति की गई थी :

"3. ----------विद्वान एकल न्यायाधीश संहिता के नियम 21 के आदेश 92 के उपनियम (2) और परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 127 के बीच असंगति को सामने लाए हैं और सुझाव दिया है कि इस असंगति को दूर करने के लिए उपाय किए जाने चाहिए। हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा प्रकट किए गए विचार को पूर्ण रूप से पृष्ठांकित करते हैं।"

(जोर दिया जाए)

तथापि उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया कि उच्च न्यायालय असंगति का समाधान करने और विक्रय अपास्त करने में न्यायानुमत था यद्यपि निक्षेप तीस दिन के पश्चात् किन्तु साठ दिन के भीतर किया गया था।

3.5. 1986 के पूर्ववर्ती निर्णय को उलटते हुए 1990 का पश्चात्वर्ती उच्चतम न्यायालय का निर्णय—यह मामला पी॰ के॰ उन्नी बनाम निर्मला इंडस्ट्रीज में उच्चतम न्यायालय के समक्ष पुन: आया। न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने बसवंतप्पा के मामले में न्यायालय के पूर्ववर्ती विनिश्चय को उलट दिया। उच्चतम न्यायालय ने प्रेक्षण किया:—

"11. कानूनों के शब्द स्पष्ट, निश्चित और असंदिग्धार्थ होने के कारण उनके अर्थान्वयन के लिए कोई बाह्य सहायता लेने के लिए कोई क्षेत्र नहीं है। ऐसा होने पर भी प्रत्यर्थी की काउंसेल के तर्कों से भिन्नता होने के कारण हम 8 अप्रैल, 1974 को लोक सभा में पुर:स्थापित विधेयक के खण्ड 102 के संबंध में उद्देश्यों और कारणों के कथन के प्रति निर्देश करेंगे [अनुच्छेद 127 का संशोधन करते हुए भारत के राजपत्र (असाधारण) भाग 2, खण्ड 2, तारीख 8 अप्रैल, 1974 में प्रकाशित] यह कथन करता है कि:

"**खण्ड 102 (परिसीमा अधिनियम 1963 की अनुसूची का संशोधन)**—आदेश 21 के नियम 89 के अधीन निक्षेप पर किसी डिक्री के निष्पादन में विक्रय अपास्त करने के लिए कोई आवेदन विक्रय की तारीख से तीस दिन के भीतर किया जाना अपेक्षित है। अनुभव प्रदर्शित करता है कि यह कालावधि बहुत छोटी है और बहुधा कठिनाई उत्पन्न करती है क्योंकि निर्णीत ऋणी प्राय: उस समय के भीतर धन की व्यवस्था करने मे असफल रहता है। बैंकें सामान्यत: उधारों और अग्रिमों को मंजूरी देने में तीस दिन से अधिक लेती हैं। इन परिस्थितियों में परिसीमा अधिनियम की अनुसूची की प्रविष्टि 127 का किसी डिक्री के निष्पादन में विक्रय अपास्त करने के लिए किसी आवेदन के संबंध में परिसीमा की अवधि साठ दिन तक बढ़ाने के लिए संशोधन किया जा रहा है। परिसीमा की कालावधि में इस वृद्धि से क्रेता पर प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि क्रय धन का पांच प्रतिशत उसको संदत्त किया जाना अपेक्षित है। परिसीमा की बढ़ाई गई कालावधि का लाभ किसी डिक्री के निष्पादन में विक्रय अपास्त करने के लिए आदेश 21 के नियम 90 या नियम 91 के अधीन किसी आवेदन को भी उपलब्ध होगा। परिसीमा की कालावधि में वृद्धि को ध्यान में रखते हुए विक्रय की पुष्टि को परिसीमा की बढ़ाई गई कालावधि के समाप्त होने की प्रतीक्षा करनी होगी।"

(जोर दिया गया)

उच्चतम न्यायालय ने पैरा 15 में निम्नलिखित जोड़ा:—

"सुसंगत उपबन्धों के अर्थान्वयन में हमें कोई विरोध या संदिग्धता या त्रुटि या लोप दिखाई नहीं पड़ता है। हम इस तर्क में भी कोई योग्यता नहीं पाते हैं कि अनुच्छेद 127 परिसीमा के संबंध में आदेश 21 के नियम 92(2) पर अभिभावी होना चाहिए। हम दोनों उपबन्धों को भिन्न प्रयोजनों के लिए समय के चिरभोग के रूप में और समान प्रभावकारिता तथा विशिष्टत: वाले मानते हैं। यह सूत्र कि साधारण कथन विशेष स्थान का अल्पीकरण नहीं करते उनके अर्थान्वयन से सुसंगत नहीं हैं। हिडन मामले ((1584) 3 को रैप 7 क : 76 ई आर 737) का सिद्धान्त भी इस विवाद्यक में मुद्दे पर कोई सहायता नहीं करता है। वह रिष्टि जो कि विधान-मंडल ने अनुच्छेद 127 के संशोधन द्वारा उपचार के लिए उपवर्णित की है, वह है जो उद्देश्यों और कारणों के खण्ड में कथित की गई है। उस उद्देश्य की पूर्ति किसी डिक्री के निष्पादन में विक्रय अपास्त करने के लिए कोई आवेदन फाइल करने के लिए अधिक लम्बी अवधि विहित करके की गई थी। इसके आगे, जैसा कि पहले देखा जा चुका है, आदेश 21 के

नियम 92(2) के संशोधन द्वारा निक्षेपकर्ता को उसके द्वारा गणितीय या लिपिकीय गलती के कारण निक्षेप में की गई कमी की पूर्ति करने के लिए अवसर दिया गया था। किसी भी अन्य संबंध में विधान-मंडल ने निक्षेप करने के लिए विहित कालावधि का विस्तार करने का आशय प्रकट नहीं किया।"

(जोर दिया गया)

पूर्वोक्त तर्क पर पूर्ववर्ती निर्णय को उलटते हुए, उच्चतम न्यायालय ने इस आशय की विधि घोषित की कि जब कि विक्रय अपास्त करने के लिए आवेदन साठ दिन में किया जा सकता है, अपेक्षित निक्षेप तीस दिन में किया जाना होगा।

तथापि, उसी निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने इस आशय का प्रेक्षण किया है कि संशोधन के लिए आवश्यकता विद्यमान है। न्यायालय कहता है:—

"शायद यह अधिक अच्छा, अधिक तर्कसंगत, युक्तियुक्त और व्यवहार्य होता, जैसा कि केरल उच्च न्यायालय द्वारा दक्षिनी बनाम माधवन, ए आई आर, 1982, केरल 126 में कहा गया है कि निक्षेप करने के लिए कालावधि बढ़ा दी जाए जिससे कि उसे आवेदन करने के लिए विहित के तत्समान बनाया जा सके और ऐसी बढ़ाई गई कालावधि संशोधन के उद्देश्य अर्थात् निर्णीतऋणी की स्थिति सुधारने के उद्देश्य की अधिक अच्छी पूर्ति करेगी, किन्तु ऐसे विषय अनन्यत: संसद द्वारा बनाए जाने वाले विधान के क्षेत्र के अन्तर्गत हैं और न्यायालय कमी के बारे में उपधारणा नहीं कर सकता तथा लोप के बारे में नहीं बता सकता। विधान-मंडल ने उससे अधिक नहीं किया जो उसने किया। हमारे विचार से इसने उसकी पूर्ति कर दी है जिसकी पूर्ति करने के लिए वह उपवर्णित किया गया है। न उससे अधिक न उससे कम।"

(जोर दिया गया)

3.6. क्या वास्तव में अनुच्छेद 127 के संशोधन के उद्देश्य की पूर्ति हुई है?—नहीं—अनुच्छेद 127 के संशोधन का उद्देश्य इस तथ्य के कारण उद्भूत होने वाली रिष्टि का उपचार करना था कि बैंक प्राथमिक रूप से उधार मंजूर करने में तीस दिन से अधिक लेती हैं और अनुभव दर्शित करता है कि निर्णीतऋणी प्राथमिक रूप से न्यायालय में तीस दिन के समय के भीतर निक्षेप करने में उन्हें समर्थ बनाने के लिए अपेक्षित उधारों की व्यवस्था करने में असफल रहते हैं और इसके परिणामस्वरूप संबंधित निर्णीतऋणी को कठिनाई होती है। भारत के विधि आयोग ने 18 वर्ष से भी काफी पहले प्रस्तुत की गई अपनी 54वीं रिपोर्ट में इस आशय के प्रेक्षण भी किए थे। यह उस रिपोर्ट में था कि कठिनाई को, कालावधि तीस दिन से बढ़ाकर साठ दिन करके, दूर करने का प्रयास किया गया था जिससे कि निर्णीतऋणी आवश्यक उधार को प्राप्त कर सके। यह कठिनाई इसलिए थी क्योंकि बैंकों को उधार मंजूर करने के लिए तीस दिन से अधिक की आवश्यकता होती थी। इस रिष्टि का उस दशा में के सिवाय उपचार नहीं किया जा सकता था कि निर्णीतऋणी या संबंधित सम्पत्ति में हितबद्ध व्यक्ति को धन अभिप्राप्त करने के लिए पर्याप्त समय दिया जाए। इस प्रकार संशोधन का उद्देश्य वास्तव में विफल हो गया। विक्रय अपास्त करने के लिए कोई आवेदन करने के लिए तीस दिन से अधिक समय की आवश्यकता नहीं थी। एक बार जब निक्षेप कर दिया जाता है तो आवेदन उसके साथ या तुरन्त किया जा सकता है क्योंकि यह आवेदन का प्रारूपण नहीं है जो समय लेता है। समय की आवश्यकता बैंक से उधार अभिप्राप्त करने के लिए निर्णीतऋणी के लिए थी। अनुमानत: मामले की इस विमा पर प्रकाश नहीं डाला गया था, न्यायालय ने इस आशय का टिप्पण किया कि संशोधन के उद्देश्य की पूर्ति कर दी गई थी। जो भी हो, उच्चतम न्यायालय के प्रति अत्यधिक आदेश रखते हुए और सम्यक मतभिन्नता होते हुए, तथ्य यही रहता है कि संशोधन का उद्देश्य, पूरा होने के स्थान पर वास्तव में, विफल हो गया है।

अध्याय 4

तुरन्त संशोधन करने के लिए अत्यावश्यकता

4.1. संशोधन के लिए अनिवार्य मामला—पूर्ववर्ती अध्यायों में विचार विमर्श से, यह स्पष्ट है कि विधि की वर्तमान स्थिति में, सिविल प्रक्रिया संहिता में उपबन्ध और परिसीमा अधिनियम में संबंधित तथा पूरक उपबन्ध के बीच स्पष्ट फर्क

है। सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन निष्पादन-विक्रय अपास्त करने के लिए किसी आवेदन के साथ सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 89(1) में उपबन्धित आवश्यक निक्षेप होना चाहिए। किन्तु आवेदन करने के लिए और निक्षेप करने के लिए विहित परिसीमा कालावधियां क्रमश: साठ दिन और तीस दिन होने के कारण भिन्न हैं। सिद्धान्तत: और साथ ही व्यवहार में यह प्रकट रूप से स्पष्ट है कि यदि अपास्त करने के लिए आवेदन के साथ पर्याप्त रकम का निक्षेप होगा तो यह अर्थहीन होगा कि आवेदन करने के लिए, यदि निक्षेप तीस दिन के भीतर किया जाना है तो, साठ दिन दिए जाएं। यह भी अर्थहीन है क्योंकि समय के साथ महसूस की गई आवश्यकता इस अनुभव पर आधारित है कि बैंकें, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 89 का फायदा चाहने वाले निर्णीत ऋणी को उधार मंजूर करने के लिए तीस दिन से अधिक लेती है। यदि निक्षेप बैंककारी प्रणाली में होने वाली कठिनाइयों के कारण तीस दिन के भीतर नहीं किया जा सकता है तो इसका क्या फायदा होगा कि उसे निक्षेप के साथ आवेदन करने के लिए साठ दिन दिए जाएं। कठिनाई तीस दिन के भीतर उधार लेने में उत्पन्न होती है, न कि तीस दिन में आवेदन का प्रारूपण करने में। इसलिए 1976 से पूर्ववर्ती विधि ने निक्षेप के लिए और साथ ही आवेदन करने के लिए तत्समान कालावधि के लिए उपबन्ध किया था। उसी पद्धति को उधार प्राप्त करने के लिए निर्णीत ऋणी को साठ दिन देने के विधान-मंडल के आशय को, जो आशय उद्देश्यों और कारणों के खण्ड में स्पष्टत: उपवर्णित किया गया था, प्रभारी करने में अपनाए जाने की आवश्यकता थी। अत: वह आवश्यकता स्पष्ट है और न्यायालय बार-बार तदनुसार इस पर जोर दे रहे हैं।

4.2. न्यायिक निर्णय—जैसा कि ऊपर वर्णित किया गया है, न्यायालयों ने, जिनके अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय है, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 92(2) में उपबन्ध का संशोधन करने के लिए आवश्यकता को बताया है जिससे कि संहिता के आदेश 21, नियम 92(2) में "तीस दिन" के स्थान पर "साठ दिन" रखे जा सकें।

4.3. कठिनाई और अत्यावश्यकता—इसके अतिरिक्त, निर्दोष निर्णीत ऋणियों के साथ इस तथ्य के कारण अन्याय भी होता है कि इस असंगतता के कारण, निक्षेप करने के लिए कालावधि अपरिवर्तित रहती है और विधान-मंडल का आशय उधार लेने में उन्हें समर्थ बनाने के लिए, जिससे कि सम्पत्ति खो जाने से बचाने के लिए न्यायालय में अपेक्षित रकम का निक्षेप करना संभव बनाने में उन्हें समर्थ किया जा सके, निष्फल हो जाता है और वे, जिन्होंने उस विधि के निर्वचन के आधार पर अपनी कार्रवाई में परिवर्तन किया है, जिसको 1986 में बसवंतप्पा के मामले में उच्चतम न्यायालय की स्वीकृति मिली थी, अब अत्यधिक हानि उठाएंगे क्योंकि उक्त निर्णय हाल में 1990 में पी॰ के॰ उन्नी के मामले में उलट दिया गया है। अत: लम्बित मामलों का विनिश्चय किए जाने के पूर्व इस स्थिति का समाधान करने की स्पष्ट आवश्यकता है और उनका भाग्य इस समय उनके विरुद्ध है इस बात के होते हुए भी कि विधायी आशय उनकी सुरक्षा करने का है जो कि परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 127 के 1976 के संशोधन में परिलक्षित होता है।

4.4. सिफारिश—उसके प्रकाश में जो हमने ऊपर कहा है, हमारी तुरन्त सिफारिश यह है कि सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के आदेश 21, नियम 92(2) में "साठ दिन के भीतर" शब्दों के स्थान पर "तीस दिन के भीतर" शब्द रखे जाने चाहिएं और सिफारिश को उन मामलों को, जो न्यायालय में समाप्त नहीं हुए हैं, इस समय वर्णित कारण से इसे भूतलक्षी या पूर्वव्यापी प्रभाव देकर लागू किया जाना चाहिए।

4.5. यह सिफारिश की जा रही है क्योंकि 1986 में बासवंतप्पा के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने निर्णय में उस क्षेत्र को अभिनिर्धारित किया था जब तक कि उसे 1990 में पी॰ के॰ उन्नी के मामले में उलट नहीं दिया गया और संशोधन करने में असफलता के परिणामस्वरूप 1990 तक संबंधित निर्णीत ऋणियों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा। किन्तु अब वह स्थिति बदल गई है। वे निर्णीत ऋणी, जिन्होंने उस विधि के निर्वचन पर कार्य किया है, जो 1986 में बासवंतप्पा के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा भी मान्य ठहराई गई थी, घोर कठिनाई का सामना करेंगे और उनके भाग्य पर अद्यतन विधि से, जो 1990 में उन्नी के मामले में घोषित की गई है, प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। अत: यह आवश्यक है कि संशोधन भूतलक्षी या पूर्वव्यापी प्रभाव का इस अर्थ में बनाया जाना चाहिए जिससे कि उसे उन सभी लम्बित मामलों को, जो न्यायालयों द्वारा अन्तिम रूप से समाप्त नहीं किए गए हैं, प्रस्तावित संशोधन के प्रवर्तन तक लागू किया जा सके।

अत: हम इस आशा में सिफारिश करते हैं कि संशोधन के लिए और उसे तुरन्त करने की अत्यावश्यकता को अनुभव किया जाएगा और अभागे निर्णीतऋणियों तथा नीलाम की गई सम्पत्ति में हित रखने वाले व्यक्तियों के प्रति घोर अन्याय को रोका जाएगा।

(एम॰ पी॰ ठक्कर)
अध्यक्ष

(वाई॰ वी॰ अंजनेयुलु)
सदस्य

(पी॰ एम॰ बक्शी)
सदस्य

(महेश चन्द)
सदस्य

(जी॰ वी॰ जी॰ कृष्णमूर्ति)
सदस्य-सचिव

नई दिल्ली,
तारीख 4 अप्रैल, 1991

3-5/M of LJ/ND/93

टिप्पण और निर्देश

अध्याय 1

1/1. नीचे लिखित अध्याय 2 और नीचे लिखित अध्याय 3

1/2. आदेश 21, नियम 92(2), सिविल प्रक्रिया संहिता

1/3. अनुच्छेद 127, परिसीमा अधिनियम, 1963

अध्याय 2

2/1. वनीसामी थेवर बनाम पेरिय्यास्वामी थेवर, ए आई आर 1917 मद्रास 176, 177

2/2. मतरानी देवी बनाम छयू प्रसाद, ए आई आर 1972 पटना 55

2/3. भारत के राजपत्र (असाधारण) तारीख 8 अप्रैल, 1974 के भाग 2, खण्ड 3 में प्रकाशित सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1974, विधेयक संख्या 27 में खण्डों पर टिप्पण का खण्ड 102

अध्याय 3

3/1. दक्षिनी बनाम माधवन, ए आई आर 1982 केरल 126, 127 (मुख्य न्यायमूर्ति पोटी एजी॰ और न्यायाधीश भास्करन)

3/2. बसवंतप्पा बनाम जी॰ एन॰ धारवाड़कर, (1986) 4 एस सी सी 273

3/3. दक्षिनी बनाम माधवन, ए आई आर 1982 केरल 126, 127, पैरा 2

3/4. बसवंतप्पा बनाम जी॰ आर॰ धारवाड़कर, (1986) 4 एस सी सी 273, पैरा 3

3/5. पी॰ के॰ उन्नी बनाम निर्मला इंडस्ट्रीज़, ए आई आर 1990 एस सी 933, 936, 937 पैरा 11 से 16 (मई): (1990) 2 एस सी सी 378

3/6. पी॰ के॰ उन्नी बनाम निर्मला इंडस्ट्रीज, ए आई आर 1990 एस सी 933, 936, 937, पैरा 11-16 (मई) 1990 2 एस सी सी 378

3/7. भारत के राजपत्र (असाधारण) तारीख 8 अप्रैल, 1974 के भाग 2, खण्ड 3 में प्रकाशित सिविल प्रक्रिया (संशोधन) विधेयक, 1974, 1974 का विधेयक सं॰ 27 में खण्डों पर टिप्पण का खंड 102

3/8. 6 फरवरी, 1973 को प्रस्तुत की गई 54वीं रिपोर्ट का पैरा 21.40 देखिए।

अध्याय 4

4/1. भारत के राजपत्र, असाधारण, तारीख 8 अप्रैल, 1974 के भाग 2, खण्ड 2 में प्रकाशित सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1974, 1974 का विधेयक सं॰ 27 में खण्डों पर टिप्पण का खण्ड 102।

4/2. ऊपर का अध्याय 3

4/3. (1990) 2 एस सी सी 378: ए आई आर 1990 एस सी 933

MGIPCBE-PTS-5 M of L&J/ND/93-16.2.96-200 Copies.

©

PLD. 92. {XXXIX (H)}
200—1993 (DSK-IV)

विक्रेता—(1) प्रकाशन और विक्रय प्रबन्धक, विधि साहित्य प्रकाशन, भारत सरकार, भारतीय विधि संस्थान भवन, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110 001.
(2) प्रकाशन-नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110 054.